वर्त्तमान व्यवस्था में बहुजन किसान

- विजय जावंधिया

स्वतंत्रता के बाद ही से हमारे देश में संगठित-शहरी-औद्योगिक क्षेत्र और असंगठित-ग्रामीण क्षेत्र में हो सकने वाली आमदनी के विषय में भारी नीतिगत विषमता है. इन क्षेत्रों के लिए क्रमशः 'लिविंग वेज' और 'मिनिमम वेज' ऐसे दो मापदंड हैं. एक तरफ तो 'लिविंग वेज' वह न्यूनतम वेतन है जिसमें एक कर्मचारी पांच सदस्यों के परिवार की जरूरतें पूरी कर पायेगा; और दूसरी तरफ, असंगठित क्षेत्र में लागू 'मिनिमम वेज' वह न्यूनतम वेतन है जिसमें एक कामगार मात्र अपने जीने के लिए आवश्यक कैलोरी खाद्य-ऊर्जा खरीद पायेगा. इस दोहरी व्यवस्था में निहित जालसाजी स्पष्ट रूप से सरकार की अन्यायपूर्ण नीति का पर्दाफाश करती है.

बहुजन किसान

देश का बहुजन समाज संगठित क्षेत्र के बाहर है. इसमें बहुत बड़ा हिस्सा किसानी करता है. कारीगर समाजों में भी कई किसानी भी करते हैं. जब कि सरकारी कर्मचारियों के लिए वेतन आयोग तो तुरंत 1947 में ही बना दिया गया था, कृषि मूल्य आयोग की स्थापना तो 1965 में हुई! उपज के न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने के लिए 'कृषि लागत और मूल्य आयोग' औद्योगिक क्षेत्र से अलग और गलत तरीका इस्तेमाल करता है. साथ ही घोषित मूल्य से कम मूल्य पर किसान को उसकी उपज बेचनी न पड़े इसके लिए कोई कानूनी प्रावधान आज तक नहीं किया गया.

दूसरी ओर हर दस साल में वेतन आयोग सभी कर्मचारियों और अधिकारियों के लिए न्यूनतम वेतनों की सिफारिश करता है. इन्हीं सिफारिशों के आधार पर सेना में सेवारत सैनिकों और अफसरों के वेतन भी निश्चित किये जाते हैं. इन वेतनों पर कर्मचारियों का कानूनन अधिकार बनता है. अंग्रेजों के जमाने से सरकारी नौकरों और किसान-मजदूरों के वेतन - आमदनी में जान-बूझ कर अंतर रखा जाता है, यह बात तो किसानों के मसीहा म. जोतीराव फुले ने अपनी मराठी पुस्तक 'शेतकऱ्या चा आसूड' ('किसानों का कोड़ा') में ही लिख रखी है: "गोरे अंग्रेज की सरकार ने सरकारी कर्मचारियों के वेतन बढ़ा कर, और किसानों पर कई प्रकार के कर लगाकर किसानों को कर्जे के बोझ तले दबा दिया है."

वेतन आयोग

अगर हम पहले से ले कर सातवें वेतन आयोग का अध्ययन करें, और अब आठवें वेतन आयोग की तैयारियों को देखें, तो यह बात एकदम खुल कर सामने आ जाती है कि स्वतंत्र भारत की सरकार भी अंग्रेजों की लकीर ही खींचती आई है. पाँचवां वेतन आयोग 1996 से लागू हुआ. इसमें न्यूनतम वेतन वृद्धि 2500 रुपये प्रति माह थी. महंगाई भत्ता और अन्य भत्ते अलग थे. छठा वेतन आयोग 2006 में लागू हुआ. इसमें न्यूनतम वेतन सात हजार रुपये प्रति माह था. वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी वेतन आयोग के खिलाफ थे, लेकिन उन्होंने 2016 में सातवां वेतन आयोग लागू किया. सातवें वेतन आयोग का न्यूनतम वेतन 18000 रुपये प्रति माह है. इसका मतलब है कि हर दस साल में सरकारी कर्मचारियों के वेतन में 2.5 से 3 गुना वृद्धि होती है. देशभर के सभी कर्मचारी अब 2026 के आठवें वेतन आयोग का सपना देखने लगे हैं. आठवें वेतन आयोग का न्यूनतम वेतन 45 हजार रुपये प्रति माह या उससे भी ज्यादा होगा. ऐसे कर्मचारी का वेतन 2036 के बाद एक लाख रुपये से अधिक होगा. अगर इसी क्रम की सरकारी नीति बरकरार रहती

है तो 2047 के विकसित भारत में क्या चतुर्थ श्रेणी के सरकारी कर्मचारी का वेतन क्या ढाई से तीन लाख रु. नहीं होगा? और क्या सारी औद्योगिक, शहरी व्यवस्था में संगठित क्षेत्र के लोगों के वेतन इसी के अनुरूप नहीं बढ़ेंगे?

आमदनी के विषय में न्याय हो

गांधीवादी अर्थशास्त्री डॉ. जे. सी. कुमारप्पा ने 1949 में स्पष्ट रूप में यह चेतावनी दी थी कि 'किसान उत्पादन बढाते रहें इसके लिए दाम एक निश्चित स्तर के नीचे न जाएँ इस बात की गारण्टी देना सरकार की जिम्मेदारी है. लेकिन कृषि उपज के दाम और कृषि की आमदनी की गारण्टी देने से भी बात नहीं बनेगी तो कृषि क्षेत्र की आमदनी और औद्योगिक क्षेत्र की आमदनी में समन्वय स्थापित करना होगा.' सरकारी नीतियों ने इस समन्वय को पूरी तरह से खत्म कर दिया है. हमारा वेतन आयोग को कोई विरोध नहीं है, लेकिन अगर आजाद भारत में डॉ कुमारप्पा की चेतावनी को नजरंदाज कर वेतन आयोग का इस्तेमाल विषमता बढाने और औद्योगिक माल का बाजार आबाद करने के लिए किया जा रहा हो तो उसका जिक्र तो करना ही होगा.

हम यह भी मान लें कि आठवां वेतन आयोग भी लागू किया जाए. लेकिन यदि चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को 1500 रुपये प्रतिदिन मिल रहे हैं, तब ग्रामीण क्षेत्र में असंगठित और खेतिहर मजदूरों को 1500 रुपये न सही, कम से कम 800-1000 रुपये प्रतिदिन तो मिलना ही चाहिए. यह व्यवस्था भी सरकार करे. साथ ही इन नए वेतनों को हिसाब में लेकर कृषि-उपज के दाम तय हों, और किसान को ये मूल्य मिलें इसका कानूनी प्रावधान सरकार करे.

एक तरफ, देश और विश्व-बैंक (WB) तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) विदेश के अर्थशास्त्रियों का कहना है कि वेतन आयोगों द्वारा संगठित क्षेत्र में वेतन वृद्धि से बाजार में होनेवाली मुद्रा की बढ़ोत्तरी मुद्रास्फीति का कारण नहीं बनती. वहीं दूसरी तरफ वे यह भी कहते हैं कि कृषि-उपज के दाम बढाने से महंगाई और मुद्रास्फीति होती है. हम यह दोहरी बात कैसे मान लें? यह बहुजन समाज को गुलाम बनाए रखने के लिए अंग्रेजों का दिया हुआ दिमाग और नीति नहीं तो और क्या है?